IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

श्रीमद्भगवतगीता के भक्ति योग आलोक में सगुण व निर्गुण भक्ति

आकाश त्रिपाठी
सहायक प्राध्यापक
धुरवाराव माड़िया शासकीय महाविद्यालय भैरमगढ़,
बीजापुर।

शोध सारांश (Abstract)

इस शोध पत्र में गीता के बारहवें अध्याय, जो की भक्ति योग से संबंधित है, का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस शोध पत्र में भक्ति योग में वर्णित भक्ति के स्वरूपों की चर्चा की गयी है, जो मुख्य रूप से सगुण भक्ति व निर्गुण भक्ति पर केन्द्रित है। भारतीय जनमानस मे भक्ति जिस प्रकार से रची बसी है, उसका बाह्य अवलोकन करते हुये श्रीमद्भगवतगीता में भक्ति के गूढ रहस्यों की चर्चा इस शोध पत्र का वर्ण्य विषय है जैसे – इसमें सगुण व निर्गुण भक्ति के लक्षण क्या बताए गए हैं? एक साधारण मनुष्य के लिए क्या श्रेयस्कर हो सकता है जिसे वह आत्मसात करके उस अनंत ईश्वर की कृपा का पात्र बन सकता है और परम शांति का अनुभव कर सकता है?

उपरोक्त वर्णित प्रश्नों का, श्रीमद्भगवतगीता को जिन महान आत्माओं ने अपने जीवन में उतारा तथा उस पर बड़े ही गूढ भाष्य लिखे हैं, के माध्यम से एक सकारात्मक अध्ययन करने की चेष्टा की गयी है। इन भाष्यकारों में स्वामी रामसुखदास, प्रभुपाद, तिलक, आचार्य रजनीश के भाष्य का प्रमुखतः से अवलोकन किया गया है| इसके अतिरिक्त विभिन्न शोध पत्रों का भी अवलोकन किया गया है| साथ ही साथ विश्लेषणात्मक और दार्शनिक पद्धति का प्रयोग किया गया है| अंत मे इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य के तौर पर यह समझने का प्रयास किया गया है कि श्रीमद्भगवतगीता के भक्तियोग अध्याय में वर्णित सगुण एवं निर्गुण भक्ति के बीच मे विभेद है या अभेद है। यदि विभेद है तो क्या है? और यदि अभेद है तो इन दोनों भक्ति के स्वरूपों में किस तरह से साम्य है।

बीज शब्द *– भक्ति, सगुण, निर्गुण, अवलोकन, विभेद, साम्य।*

प्रस्तावना

भक्ति, समर्पण और प्रेम की एक ऐसी भावना है, जो अपने ईश्वर या अपने आदर्शों के प्रति समर्पित होती है| अपने इस प्रेम और समर्पण के माध्यम से अपने आराध्य तक पहुचने के साधन के रूप में कार्य करती है| □ राधाकृष्णन भक्ति के सारतत्व के बारे में लिखते हुए गीता के 11.55 श्लोक को बताते हैं, जिसके अनुसार – जो भी मुझे अपना परमलक्ष्य बनाते हैं और निस्वार्थ भाव से कर्म करते हुए स्वयं को पूर्ण रूप से मुझमे समर्पित कर देते हैं और किसी भी प्राणी से द्वेष नही रखते, वे मुझे प्राप्त करते हैं|□[1] मुख्य रूप से प्रेम, समर्पण और निस्वार्थ कर्म भक्ति के प्रमुख लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं| जैसा कि नारद भक्ति सूत्र का प्रारंभ भी प्रेम तत्व से होता है-

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः ||1||

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरुपा ||2||

अमृतस्वरुपा च ||3||

अर्थात् नारद कहते हैं – भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरुपा है और अमृतस्वरुपा है|[2] इसी प्रकार रंगनाथन ने भक्ति योग में कर्म के महत्व को बताया है - □भक्ति योग सही कर्मों का पालन करना है, जो भक्ति में पूर्णता प्राप्त करने के परिणामों में से एक है| परंपरागत नैतिकता के प्रति गलत दृष्टिकोण नैतिक परजीवियों को जन्म देता है अर्थात वे लोग जो दूसरों से नैतिकता और नैतिक नियमों के पालन की अपेक्षा रखते हैं और स्वयं नहीं करते|□[3]

भारत में जब हम इस भक्ति के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो भक्ति साहित्यिक स्रोतों के अलावा भौतिक अवशेषों के रूप में भी सर्वत्र मौजूद हैं| ये भौतिक अवशेष हमें भारत में मंदिरों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं| भारत में भक्ति और मंदिरों का घनिष्ठ संबंध रहा है। मंदिर भक्ति और आध्यात्मिकता के केंद्रीय स्थल होने के साथ साथ जनमानस के सामाजिक, धार्मिक जीवन से गहन रूप से जुड़ा रहा है| भारत में भक्ति आन्दोलन की प्रगति के साथ साथ मंदिर निर्माण में भी प्रगति होती रही है जैसे – □दक्षिण भारत में पल्लवों ने सर्वप्रथम मंदिर निर्माण को बल देना प्रारंभ किया और धार्मिक अनुदान दिए| बाद में ये और भी क्षेत्रों में फैला विशेषरूप से चोल क्षेत्र में| यही भक्ति के साथ भी हुआ, जैसे - जैसे मंदिर निर्माण की जड़ें मजबूत होती गयीं वैसे वैसे भक्ति आन्दोलन की जड़ें भी गहरी होती चली गयीं|□[4] इसप्रकार मंदिर और भक्ति आम जन मानस से जुड़ते चले गए| जुड़ाव का एक कारण यह भी रहा कि मंदिर से जुड़े बाह्य क्रियाकलाप जैसे – पूजा, आरती, भजन, कीर्तन आदि का जनमानस द्वारा सहजता से आत्मसात कर लेना| हालाँकि भक्ति को समझने के लिए ये बाह्य क्रियाकलाप बहुत सतही समझ दे सकते हैं| लेकिन भक्ति इन बाह्य क्रियाकलापों के अतिरिक्त इसमें निहित आतंरिक अध्यात्मिक ज्ञान को न समझे बिना अधुरा है और इस ज्ञान को साहित्यिक स्रोतों के रूप में उपलब्ध

अनेकों ग्रंथों में पाया जा सकता है | इन ग्रंथों में यदि सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ की बात की जाये, तो वह है – भगवतगीता |

भगवतगीता, जिसमें अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण के बीच की एक महत्वपूर्ण दृष्टांत और उपदेश है। गीता में भक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है| गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को जीवन के मार्ग का मार्गदर्शन कराते हैं और भक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका बताते हैं। इस ग्रंथ के अध्याय 9, अध्याय 12, और अध्याय 18 में भक्ति के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त अध्याय 5 से लेकर अध्याय 11 तक के विभिन्न श्लोकों में भक्ति की चर्चा मिलती है।[5]

भगवद गीता के कुछ महत्वपूर्ण भक्ति संबंधित उद्धरण निम्नलिखित हैं:

1. भगवतगीता, अध्याय 9, श्लोक 22:-

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते | तेषां नित्यभीयुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ||"

अन्य कामनारहित तथा मेरी चिंता में निरत जो व्यक्ति गण सर्वतोभावेन मेरी उपासना करते हैं, नित्य मुझमे एकनिष्ठ उन व्यक्तियों का योग और क्षेम मैं वहन करता हूँ।[6]

2. भगवतगीता, अध्याय 18, श्लोक 66:-

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज |अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ||"

वर्ण, आश्रम आदि समस्त शारीरिक और मानसिक धर्मों का परित्याग कर एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो| मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा, तुम शोक मत करो|[7]

उपरोक्त वर्णित परिचय, इसका प्रमाण है कि - श्रीमद्भगवत्गीता में भक्ति की चर्चा केवल अध्याय 12 में ही नही है, बल्कि अनेकों अध्यायों में की गयी है | वस्तुतः यदि देखा जाये, तो गीता में भक्ति की चर्चा ही सर्वाधिक दिखाई देती है |

<u>अध्याय 12 का स्वरुप - व्यक्तिपरक अथवा वस्तुपरक</u>

अध्याय 12 तक आते आते अर्जुन भक्ति के विषय में बहुत कुछ जान एवं समझ चुका है| वह जान चुका है कि ईश्वर प्राप्ति के विभिन्न मार्ग हैं| और इन मार्गों की वह मुख्यतः दो श्रेणियां करता है| पहली श्रेणी उनकी है जो व्यक्त, सगुण, साकार रूप को भजते हैं और दूसरे वह जो अव्यक्त, निर्विशेष, निर्गुण – निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं| इस स्थिति में अब अर्जुन यह जान लेना चाहता है कि – उसके लिए इनमें से कौन सा मार्ग श्रेष्ठ होगा, न कि यह कि इनमें से कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है| जैसा की बहुत से व्याख्याकारों ने अर्जुन के इस प्रश्न को इसी सन्दर्भ में ग्रहण किया है| विशेषकर जो सगुण – साकार रूप के उपासक हैं, वे मानते हैं कि भगवान के व्यक्त रूप की उपासना ही श्रेष्ठ है न कि निर्गुण – निराकार की उपासना श्रेष्ठ है| जबकि श्रीकृष्ण

ने इस अध्याय में भी और साथ ही साथ अन्य अध्यायों (जैसे – अध्याय 5,6,8) में भी कहा है कि इन्द्रियों की अनुभूति से जो परे है, अव्यक्त है, अचल है, उसे भी भजने वाले अंततः मुझे ही प्राप्त होते है| अर्थात दोनों तरीके से साध्य में कोई भेद नहीं है| अतः जब दोनों ही स्थितियों में साध्य एक ही है, तो फिर किसी को दूसरे से श्रेष्ठ कैसे कहा जा सकता है|

अतः अर्जुन जो प्रश्न कर रहा है वह व्यक्तिपरक है न कि वस्तुपरक और श्रीकृष्ण जो उत्तर दे रहे हैं वह भी व्यक्तिपरक है न कि वस्तुपरक, और यह इस अध्याय की रूपरेखा से भी परिलक्षित होता है| जैसे – इस अध्याय के पहले श्लोक में अर्जुन प्रश्न पूछता है| जो इस प्रकार है –

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते | ये चाप्याक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ||

"जो आपकी सेवा में सदैव तत्पर रहते हैं, या जो अव्यक्त निर्विशेष ब्रह्म की पूजा करते हैं, इन दोनों में से किसे अधिक पूर्ण (सिद्ध) माना जाये|"[8]

इसके उपरांत श्रीकृष्ण श्लोक - 2,3,4 में एक सामान्यीकृत उत्तर देते हुए कहते हैं कि - दोनों ही साधनों से प्राप्त मुझे ही किया जा सकता है| ये श्लोक क्रमशः इस प्रकार हैं –

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते | श्रध्दया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ||

ये त्वक्षरमनिदेश्यमव्यक्तं पर्युपासते | सर्वत्रगमचिन्त्य च कूटस्थमचलं ध्रुवम ||

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुध्दयः | ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूहितहिते रताः ||

"जो लोग अपने मन को मेरे साकार रूप में एकाग्र करते हैं, और अत्यंत श्रध्दापूर्वक मेरी पूजा करने में सदैव लगे रहते हैं, वे मेरे द्वारा परम सिध्द माने जाते हैं| लेकिन जो अपनी इन्द्रियों को वश में करके तथा सब के प्रति समभाव रखकर परम सत्य की निराकार कल्पना के अंतर्गत उस अव्यक्त की पूरी तरह से पूजा करते हैं, जो इन्द्रियों की अनुभूति के परे है, सर्वव्यापी है, अकल्पनीय है, अपरिवर्तनीय है, अचल तथा ध्रुव है, वे समस्त लोगों के कल्याण में संलग्न रहकर अंततः मुझे प्राप्त करते हैं|"[9]

सामान्यीकरण करने के उपरांत भगवान् कृष्ण, अर्जुन के परिप्रेक्ष्य से आगे पूरे अध्याय में साकार भक्ति के लक्षण, महत्त्व, विशेषता आदि के रूप में विशेषीकृत उत्तर देते हैं| यह उसी प्रकार से है जैसे – कोई चिकित्सक अलग – अलग व्यक्तियों को उनकी शारीरिक अवस्था के आधार पर किसी बीमारी के लिए अलग – अलग मात्रा में दवा प्रदान करता है| उसका अंतिम साध्य बीमारी को ठीक करना होता है| ठीक वैसे ही श्रीकृष्ण, अर्जुन को उसके लिए उचित मार्ग को कहते हैं|

सगुण भक्ति व निर्गुण भक्ति विभेद

इस अध्याय के प्रारंभ में ही भगवान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि, "भक्ति चाहे सगुण रूप की हो या निर्गुण स्वरुप की, उसका अंतिम लक्ष्य मैं ही हूँ, अर्थात वह मुझे ही प्राप्त करता है|" तात्पर्य यह है कि भक्ति के साध्य में किसी प्रकार का अंतर नही है| परन्तु साधन में अवश्य अंतर है, जिसका उल्लेख इस अध्याय के पांचवें श्लोक में किया गया है –

क्लेशोअधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम | अयक्ता हि गतिर्दुखम देहवभ्दिरवाप्यते ||

"जिन लोगों के मन परमेश्वर के अव्यक्त, निराकार ईश्वर के प्रति आसक्त हैं, उनके लिए प्रगति कर पाना अत्यंत कष्टप्रद है| देहधारियों के लिए उस क्षेत्र में प्रगति कर पाना सदैव दुष्कर होता है|"

उपरोक्त उपदेश के उपरांत भगवान आगे के सभी श्लोकों में सगुण भक्ति के साधनों के विषय में ही बतलाते हैं| जिसका सारांश यह है कि - अगर कोई केवल मुझे (ईश्वर) ही भजे, मुझमे ही एकचित्त होकर रहे, तो वह मुझे आसानी से प्राप्त होगा| इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए भक्ति का अभ्यास किया जा सकता है अर्थात कीर्तन, वंदन, भजन, पूजा आदि के द्वारा मेरे लिए नित्य कर्म कर सकता है| ये नही कर सकता तो मुझमे ध्यान लगा सकता है और ये भी नही कर सकता तो अपने कर्मफलों का त्याग कर दे अर्थात अपने समस्त कर्मफलों को मुझमे अर्पित कर दे, अच्छे बुरे की चिंता छोड़ दे, तो धीरे धीरे निरंतर ये सब करने से उसमे भक्ति भाव का जन्म होता है और मुझे उपलब्ध होता है|

जिसका सार हमे इस अध्याय के 12वें श्लोक में दीख पड़ता है –

श्रेयो हि ज्ञानभ्यासाज्ज्ञानाध्दयानं विशिष्यते | ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरं ||

"यदि तुम यह अभ्यास नही कर सकते, तो ज्ञान के अनुशीलन में लग जाओ| लेकिन ज्ञान से श्रेष्ठ ध्यान है और ध्यान से भी श्रेष्ठ कर्मफलों का त्याग क्योंकि ऐसे त्याग से मनुष्य को मन की शांति प्राप्त हो सकती है|"

निष्कर्ष

इस अध्याय पर आधारित इस शोध पत्र से हमें जो भी निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं, उन्हें निम्नलिखित रूप से बिन्दुगत किया जा सकता है –

1. इस अध्याय का जो स्वरुप है, वह व्यक्तिनिष्ठ है न कि वस्तुनिष्ठ| यदि अर्जुन के स्थान पर कबीर या नानक जैसा कोई व्यक्ति होता, तो शायद इस अध्याय का वर्ण्य विषय दूसरा होता|
2. इसमें सगुण भक्ति कि चर्चा प्राधान्य विषय है, परन्तु इसका तात्पर्य यह बिलकुल नही है, कि सगुण भक्ति ही श्रेष्ठ है|
3. अध्याय के प्रारंभ में ही श्रीकृष्ण ने दोनों का साध्य एक ही निर्धारित कर दिया है, अर्थात किसी भी प्रकार कि भक्ति से प्राप्ति उन्ही की होती है|

4. इस अध्याय में यह भी स्पष्ट हो जाता है कि साकार व निराकार भक्ति में मात्र साधन का भेद है, न कि साध्य का|

इस प्रकार किसी के लिए भक्ति का कौन सा साधन उपयुक्त है, यह भक्ति पर निर्भर नही करता, बल्कि उस व्यक्ति के अपने संस्कार व स्वभाव पर निर्भर करता है|

सन्दर्भ :-

[1]Rao PN. The holy Bhagavad Gita. International Journal of Research in Social Sciences. 2015 Feb 1;5(1):598. Pg- 611

[2]नारद भक्ति सूत्र – 1,2,3

[3]Sathisha M. Bhakti Yoga and Karma Yoga as Expostulated in the Bhagavad Gita. Int. j. Adv. Multidisc. Res. Stud, 3 (5). 2023:845-8. Pg- 847

[4]Veluthat K. The Temple-Base of the Bhakti Movement in South India. InProceedings of the Indian History Congress 1979 Jan 1 (Vol. 40, pp. 185-194). Indian History Congress. Pg- 187

[5]स्वामी रामसुखदास(सं- 2075), श्रीमद्भगवद्गीता सचित्र साधक संजीवनी (परिशिष्ट सहित) हिंदी टीका, गीता प्रेस, गोरखपुर |

[6]श्रीमद विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी विद्यालंकार(1997)– श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा |

[7]श्रीमद विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी विद्यालंकार(1997)– श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा |

[8]श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद(1990)- श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, मुंबई |

[9]श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद(1990)- श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, मुंबई |